International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 160-162

देव वर्गीकरण विषयक विविध आधार

डॉ0 भानु प्रकाश त्रिपाठी

अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को देवत्व प्रदान करके उनकी स्तुति करने वाले वैदिक ऋषियों के समक्ष देवों के वर्गीकरण के आधार का प्रश्न उठा होगा, क्योंकि इसके संकेत वैदिक साहित्य में भी मिलते हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र में देवों को त्रिलोक का निवासी बताया गया है जिसमें कहा गया है कि स्वर्ग के 11 देव, पृथिवी के 11 देव तथा अन्तरिक्ष के 11 देव अपनी महिमा से इस यज्ञ की सेवा करें।[1] इससे स्पष्ट होता है कि देवों का वर्गीकरण ऋग्वैदिक काल से ही चला आ रहा है। जहाँ तक ऋग्वैदिक देवों के वर्गीकरण की आवश्यकता का प्रश्न है उसके विषय में यह कहना ज्यादा उचित है कि देवो की संख्या अत्यधिक हो जाने तथा उनमें देवों के सर्वमान्य गुणों का समन्वय हो जाने के कारण पृथक्–पृथक् देवों के स्वरूप का निर्धारण करने में कठिनाई का अनुभव होता रहा होगा है। उक्त सभी कठिनाईयों से मुक्ति पाने के लिए सम्भवतः देवों को प्राचीनकाल से लेकर आज तक विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत करके उनके समुचित स्वरूप को जानने का प्रयास किया जाता रहा है। प्राचीन काल से अब तक देवों के वर्गीकरण के लिए अपनाये गये प्रमुख आधार निम्न हैं–

संख्या के आधार पर वर्गीकरण

ऋग्वेद की ऋचाओं में प्रयुक्त हुए नामों की संख्या के आधार पर देववर्गीकरण किया जा सकता है। जिन देवों का नाम अधिकांश बार है उनको एक में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसी प्रकार उससे कम बार प्रयुक्त नाम वालों का वर्ग बनाया जा सकता है। इसी प्रकार पुनः उनसे कम का वर्ग। मैक्डौनेल ने वैदिक माइथोलोजी में संख्या के आधार पर देवों को 5 वर्गों में वर्गीकृत किया है[2]–(1) इन्द्र, अग्नि, सोम (2) अश्विन, मरूत्, वरूण (3) उषस्, सविता, बृहस्पति, सूर्य तथा पूषा (4) वायु, द्यावापृथिवी, विष्णु, रूद्र, (5) यम, पर्जन्य। संख्या के आधार पर ही देवों का वर्गीकरण एकल देवता, युगल देवता, गणदेवता के रूप में किया जा सकता है। ऐसे देव जो अकेले स्तुत हों वे एकल तथा जो युग्म के रूप में स्तुत हों वे युगल एवं जो बहुतों के साथ स्तुत हों वे गणदेवता के रूप में माने जा सकते हैं।

स्थान के आधार पर वर्गीकरण

स्थान के आधार पर देवों के वर्गीकरण की परम्परा का प्रारम्भ ऋग्वैदिक काल से ही है।[3] स्थान से तात्पर्य है निवास स्थान। निरूक्तकार ने स्थान के आधार पर देवों को विविधरूपों में बॉटा है।[4] पृथिवीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय, द्युस्थानीय। निरूक्तकार पृथिवीस्थानीय में अग्नि को, अन्तरिक्षस्थानीय में वायु अथवा इन्द्र को तथा द्युस्थानीय में सूर्य की गणना करते हैं। प्रश्न उठता है कि अग्नि, वायु अथवा इन्द्र तथा सूर्य के अतिरिक्त अन्य देवगण किस श्रेणी में आते है? इसके उत्तर में निरुक्तकार का कहना है कि विभिन्न गुणों तथा कार्यों के कारण इन देवों की अनेक नामों से स्तुति की गयी है।[5] अतएव अन्य देवों का प्रश्न ही असमीचीन है।

लिंगभेद के आधार पर देववर्गीकरण

देवों का वर्गीकरण लिंगभेद के आधार पर पुंदेव तथा स्त्रीदेवियों के रूप में किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि कतिपय देव पुंस्वरूप वाले प्रतीत होते हैं तथा कतिपय देव स्त्रीस्वरूप वाले होते हैं। अतः देवों को पुंदेव तथा स्त्रीदेव के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा–सरस्वती, पृथिवी, वाक्, पुरंधि, रुद्राणी, आदि को स्त्री देवियों की कोटि में रखा जा सकता है तथा इन्द्र, विष्णु, वायु, अग्नि, वरुण आदि को पुंदेव के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। किन्तु इस वर्गीकरण को पूर्णतः स्वीकार करना असमीचीन है। क्योंकि पुंदेव तथा स्त्रीदेव के अतिरिक्त कतिपय देव अवशिष्ट रह जाते हैं, जिनकों इन दोनों कोटि में नहीं रखा जा सकता तथा जिनकी ऋग्वेद में स्तुति की गयी है। वास्तव में ऋग्वेद में देवता का अर्थ है विषय (Subject of Matter not for God) न कि भगवान्। यह देवता शब्द के वर्तमान प्रचलित अर्थ से सर्वथा भिन्न है तभी तो द्यूत आदि को ऋग्वेद में देवत्व प्रदान किया गया है।[6]

भौतिक तथा अभौतिक आधार पर देववर्गीकरण

देवों का वर्गीकरण भौतिक तथा अभौतिक आधार पर किया जा सकता है। भौतिकदेव को स्थूलदेव तथा अभौतिकदेव को सूक्ष्मदेव के रूप में माना जा सकता है। अमूर्त देवों में विश्वकर्मा, श्रद्धा, अदिति, सुनृता, काल, प्राण आदि को रखा जा सकता है तथा इन्द्र, विष्णु, वरुण आदि को मूर्त देवता के रूप में।

यज्ञ के आधार पद देववर्गीकरण

देवों का एक वर्गीकरण याज्ञिक तथा अयाज्ञिक देव के रूप में किया जा सकता है। ऐसे देवगण जो यज्ञ में आहूत किये जाते हैं तथा यज्ञ भाग के अधिकारी होते हैं उन्हें याज्ञिक तथा शेष को अयाज्ञिक देव के रूप में वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसे–यक्ष, अपांनपात् आदि देवों को अयाज्ञिक तथा इन्द्र, विष्णु, अग्नि आदि को याज्ञिकदेव के रूप में मान सकते हैं।

गरिमा एवं लघिमा के आधार पर देववर्गीकरण

मैक्डौनेल ने अपने वैदिक माइथौलोजी नामक ग्रन्थ में लिखा है कि वैदिक देवताओं को उनकी आपेक्षिक महत्ता के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है।[7] वस्तुतः इस वर्गीकरण का संकेत भी ऋग्वेद से मिलता है[8], जहां उन्हें महान्, लघु, युवा तथा वृद्ध के नाम से अभिहित किया गया है।[9] यहां एक प्रश्न उठता है कि क्या गरिमा तथा लघिमा के आधार पर देव–वर्गीकरण सम्भव है, क्योंकि ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि तुम लोगों में न कोई अर्भक है, न कोई कुमार, तुम सभी महान् हो।[10] अतः यदि सभी महान् हैं तो उनमें उनकी महत्ता के आधार पर वर्गीकरण कैसा? अतः यहां विरोधाभास प्रकट होता है। जिसका समाधान यह है कि प्रत्येक ऋषि स्तुति करते समय प्रत्येक देव को सर्वाधिक महान् बना देता है। फिर भी यदि वैदिक देवों का समुचित अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होता है इन्द्र तथा वरुण के अतिरिक्त सभी देव आपेक्षिक

महत्ता की दृष्टि से उनसे निम्न ठहरते हैं। नैतिकतत्त्व की प्रधानता के कारण वरुण महनीय देव हैं। जो वरुण का पुराना रूप है, उसे जरथुस्त्र धर्मानुसार अहुरमज्दा कहा गया है। भारत में वरुण को प्रधानता तभी मिल पाती है जबकि भौतिक तथा नैतिक जगत् में व्यापक नियमों के प्रति श्रद्धा दिखलायी जाती है।[11] रही इन्द्र की बात, तो इस विषय में यही कहा जा सकता है कि भारत में इन्द्र ने आर्यों के जातीय नेता के रूप में प्रवेश एवं स्वयं को प्रथम आर्य विजेता के रूप में प्रतिष्ठित करके महनीय पद का वरण कर लिया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि इन्द्र तथा वरुण को सामान्य देवों की कोटि में नहीं रखा जा सकता।

मैक्डौनेल ने लिखा है कि इन्द्र, वरुण के पश्चात् महत्ता की दृष्टि से अग्नि तथा सोम का नम्बर है।[12] यहां एक प्रश्न उठता है कि देवों की लघिमा तथा गरिमा को निश्चित करने का आधार क्या है? किस आधार पर किसी देव को महान् अथवा निम्न कहा जा सकता है। इसके लिए मैक्डौनेल ने ऋग्वेद में प्रयुक्त तत्तत् देवों के नामों की संख्या को आधार माना है।[13] अर्थात् जिस देवता का नाम जितनी बार प्रयुक्त होगा वह उतना ही अधिक महान् होगा। किन्तु इस वर्गीकरण को भी पूर्ण तथा दोषरहित नहीं माना जा सकता, क्योंकि यदि प्रयुक्त नाम–संख्या के आधार पर देवों की आपेक्षिक महत्ता का निर्धारण किया जाता है तो अश्विनौ को वरुण से महान् देवता मानना पड़ेगा, क्योंकि जहां वरुण का आवाहन लगभग 30 सूक्तों में किया गया है तथा उसके प्रयुक्त नामों की कुल संख्या 250 के लगभग है, वहीं अश्विनौ के लिए 50 सूक्त हैं जिनमें उनका नाम 400 से अधिक बार आया है अतः प्रयुक्त नाम संख्या के आधार पर देव का वर्गीकरण असमीचीन है। मैक्डौनेल महोदय ने स्वयं ही इस मत का खण्डन किया है।[14]

ब्लूमफील्ड का मत[15]

ब्लूमफील्ड ने देवों को 5 वर्गों में वर्गीकृत किया है–

1. प्रागैतिहासिक देव–द्यौ, वरुण, मित्र आदि।
2. पारदर्शी या स्पष्ट देव–अग्नि, वायु, सूर्य आदि।
3. अल्पपारदर्शी या अर्धस्पष्ट देव–विष्णु।
4. अपारदर्शी–इन्द्र, वरुण तथा अश्विनौ आदि।
5. अमूर्त, प्रतीकात्मक एवं भावात्मक देव–प्रजापति, बृहस्पति, विश्वकर्मा, काल आदि देव।

कीथ के अनुसार

कीथ ने देवों को चार भागों में वर्गीकृत किया है।[16]

1. द्यु एवं पृथिवी स्थानीय देव।
2. लघु प्रकृति देव।
3. भावात्मक देव।
4. विभिन्न दिव्य प्राणियों के वर्ग।

काल के आधार पद देव वर्गीकरण

मैक्डौनेल[17] ने वैदिक माइथौलोजी की भूमिका भाग में काल के आधार पर देवताओं को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है–(1) भारतीय काल (2) भारत ईरानी काल (3) भारोपीय काल। लेकिन मैक्डॉनल ने स्वयं इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि यह वर्गीकरण तीनों कालों में से किसी एक के साथ किसी ऐच्छिक गाथात्मक प्रकल्पना पर आधारित है तथा द्यौस् के अतिरिक्त और किसी भी देवता को भारोपीय काल का मानना शङ्का से रहित नहीं है। फलतः गाथात्मक प्रकल्पनाओं के रचनाकाल के आधार पर किया गया देववर्गीकरण सन्देहास्पद ही रहेगा।[18]

मानवीकरण की प्रक्रिया के आधार पर देववर्गीकरण

प्राकृतिक शक्तियों के मानवीकरण के आधार पर भी मैक्डौनेल ने देवताओं का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है, किन्तु स्वंय उसकी यह कहकर आलोचना करते है कि मानवीकरण के स्तर के मध्य विभाजक रेखा खींचना असम्भव है। अतः इस आधार पर भी देवताओं को वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

मैक्डौनेल का अन्तिम मत

मैक्डौनेल ने देववर्गीकरण के विभिन्न आधारों का समुचित अध्ययन करने के पश्चात् उन्हें 8 वर्गों में विभाजित किया है–

1. द्युस्थानीय–द्यौ, वरूण, मित्र सूर्य, सविता, पूषा, विष्णु, विवस्वान्, आदित्यगण, उषस् तथा अश्विन आदि।
2. अन्तरिक्षस्थानीय–इन्द्र, त्रितआप्त्य, अपांनपात्, मातरिश्वा, अहिर्बुध्न्य, अजएकपात्, रूद्र, मरूत्, वायु, पर्जन्य तथा आपः।
3. पृथिवीस्थानीय–नदियाँ, पृथिवी, अग्नि, बृहस्पति, सोम आदि।
4. भावात्मक देव–भावात्मक देवों में त्वष्टा, विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अदिति, तथा दिति प्रमुख हैं।
5. देवियाँ–सरस्वती, पृथिवी, रात्रि, वाक् पुरंध्रि, इडा, राका, सिनीवाली, मही–भारती, इन्द्राणी आदि।
6. युगल देव–मित्रावरूण, इन्द्राग्नि, इन्द्रविष्णू इन्द्रवरूण, द्यावापृथिवी इन्द्रबृहस्पति आदि।
7. गणदेवता–रूद्र आदित्य, विश्वदेव, वसव आदि।
8. अवर देवता–ऋभुगण, गन्र्धव एवं रक्षक देवता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि देवों के वर्गीकरण के लिए जितने भी आधार प्रस्तुत किये जाते है वे सभी न्यूनाधिक दोष से संपृक्त हैं। किसी भी मत को पूर्णतः सन्तोषप्रद नहीं कहा जा सकता है। हाँ, मैक्डौनेल द्वारा स्वीकृत आधार, प्राकृतिक आधार को किंचित् सन्तोषद्र कहा सकता है। यद्यपि कतिपय देवताओं के प्राकृतिक आधार के विषय में शंका सम्भव है तथापि अन्य आधारों की तुलना में इस मत को ज्यादा उपयुक्त माना जा सकता है।

सन्दर्भ

1. ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ।
   अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्।।
   (ऋ0सं0–1/139/11)
2. मैक्डौनेलः वैदिक माइथोलोजी, हिन्दी अनुवाद–डॉ सूर्यकान्त चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, पृ0–39
3. ऋग्वेद, 1/139/11
4. तिस्त्रः एव देवता इति नैरूक्ताः अग्निः पृथिवीस्थानः वायुर्वा इन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।। (निरूक्त 7.5)
5. तासां महाभाग्यादेकैकस्यापि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात् (निरूक्त 7/5)
6. ऋग्वेद गंगा सहाय शर्माकृत हिन्दी अनुवाद भूमिका पृ0–4
7. मैक्डौनेलः वैदिक माइथोलोजी, हिन्दी अनुवाद डॉ सूर्यकान्त, पृ0–38
8. तदेव
9. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
   यजाम देवान्यदि शन्कवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः।।
   (ऋ0सं0–1/27/13)
10. नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः। विश्वे सतोमहान्त इत्।।
    (ऋ08/30/1)
11. मैक्डौनेल, वैदिक माइथोलोजी, हिन्दी अनुवाद डॉ0 सूर्यकान्त चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी, पृ0–39

12. तत्रैव
13. तत्रैव
14. तत्रैव
15. ब्लूमफील्ड : द रिलीजन ऑफ वेद
16. कीथ : रिलीजन एण्ड फिलॉसॅफी ऑफ वेद एण्ड उपनिषद्।
17. वैदिक माइथौलोजी हिन्दी अनुवाद–डॉ0 सूर्यकान्त पृ0–39
18. तत्रैव
19. तत्रैव, पृ0–40